नारी-चेतना और आचार्य श्री

□ कुमारी अनुपमा कर्णावट

"कुछ नदियाँ ऐसी बढ़ीं, किनारे डूब गये,
कुछ बादल ऐसे घिरे, बादल डूब गये।
पथ-काँटों पर आगाह हमें फिर कौन करे,
जब फूलों में रहनुमा हमारे डूब गये।।"

रत्नवंश के सप्तम आचार्य परम पूज्य श्रद्धेय श्री हस्तीमलजी म० सा० को देवलोक हुए एक वर्ष होने को है, किन्तु एक अपूरित रिक्तता, एक अथाह शून्यता का अहसास आज भी हमें समेटे है।

जैन समाज का एक मजबूत स्तम्भ गिर गया या फिर कह दें कि वे स्वयं पावन भूमि को नमन करने की लालसा लिए उसके आगोश में समा गये और हमेशा के लिए हमारी नजरों से ओझल हो गये, किन्तु क्या वही उनका अन्त भी था ? कदापि नहीं। जो प्रेरणा और सन्देश वे हमें अनमोल विरासत के रूप में दे गये, वे आज भी साक्षी हैं उनके अस्तित्व के और प्रतीक हैं इस विश्वास के भी कि वे यहीं हैं, हमारे मध्य, हमारे दिलों में।

संयम-साधना के सजग प्रहरी, जिनका सम्पूर्ण जीवन ज्ञान और क्रिया की अद्‌भुत क्रीड़ास्थली रहा। उनके जीवन से जुड़े स्वाध्याय, तप, त्याग, सेवा, संयम, अनुशासन इत्यादि के अनमोल दृष्टान्त आज न केवल हमारे मार्गदर्शक हैं, वरन् समाज के विकास का प्रमुख आधार भी हैं। प्रेरणा की इन्हीं प्रखर रश्मियों के मध्य उन्होंने एक ज्योति प्रज्वलित की थी नारी चेतना की।

नारी—आदि से अनन्त तक गौरव से विभूषित, समाज-निर्माण में अपनी विशिष्ट भूमिका अदा करने वाली, सदैव सम्मान की अधिकारिणी। यद्यपि कुछ विशिष्ट कालों में, कुछ विशिष्ट मतों में अवश्य ही उसे हेय दृष्टि से देखा गया, यहाँ तक कि उसे विनिमय की वस्तु भी मान लिया गया किन्तु हम उस समय भी, उसकी उपस्थिति को गौण कदापि नहीं मान सकते।

जैन दर्शन में सदैव नारी को महत्ता प्रदान की गई। उसके माध्यम से समाज ने बहुत कुछ पाया। प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव ने सृष्टि को

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

लिपियों व चौंसठ कलाओं का ज्ञान अपनी पुत्रियों ब्राह्मी व सुन्दरी के माध्यम से ही दिया। भगवान ने उनके साथ अनेक अन्य नारियों को भी दीक्षित कर स्त्रियों के लिए धर्म का मार्ग खोल दिया।

कई युगों पश्चात् महावीर स्वामी ने चतुर्विध संघ की स्थापना कर नारियों के इस सम्मान को बरकरार रखा और तत्कालीन नारियों ने भी विभिन्न रूपों में अपनी विशिष्ट छाप अंकित की। वैराग्य की प्रतिमूर्ति साध्वी-प्रमुखा चन्दन-बाला, लोरी से पुत्रों का जीवन-निर्माण करती माता मदालसा, श्रेणिक को विधर्मी से धार्मिक बनाने वाली धर्म सहायिका रानी चेलना एवं अनेकानेक अन्य विभूतियाँ जो अपने समय की नारियों का प्रतिनिधित्व करती हुईं आज भी महिलाओं में आदर्श का प्रतीक हैं और सम्मान के सर्वोच्च शीर्ष पर आसीन हैं।

किन्तु जैसे-जैसे कालचक्र चलता रहा, नारी में वैराग्य, त्याग, धर्म, नैतिकता, अध्यात्म और सृजन की ये वृत्तियाँ उत्तरोत्तर क्षीण होती गईं। उनके भीतर की मदालसा, कमलावती, ब्राह्मी और सुन्दरी मानों कहीं लुप्त हो रही थीं। अतीत से वर्तमान में प्रवेश करते-करते, समय में एक वृहद किन्तु दु:खद परिवर्तन आ चुका था। अब नारी का उद्देश्य मात्र भौतिक उपलब्धियों तक सीमित हो गया। सामाजिक चेतना की भावना कहीं खो गई और धर्म-समाज के निर्माण की कल्पनाएँ धूमिल हो गईं।

ऐसे में मसीहा बन कर आगे आये आचार्य हस्ती। वे नारी के विकास में ही समाज के विकास की सम्भावना को देखते थे। वे कहते कि "स्त्रियों को आध्यात्मिक पथ पर, धर्म पथ पर अग्रसर होने के लिए जितना अधिक प्रोत्साहित किया जायेगा, हमारा समाज उतना ही अधिक शक्तिशाली, सुदृढ़ और शक्तिशाली बनेगा।"

वे यह मानते थे कि धर्म, धार्मिक विचारों, धार्मिक क्रियाओं एवं उसके विविध आयोजनों के प्रति अटूट आस्था और प्रगाढ़ रुचि होने के कारण स्त्रियाँ धर्म की जड़ों को सुदृढ़ करने और धार्मिक विचारों का प्रचार-प्रसार करने में पुरुषों की अपेक्षा अत्यधिक सहायक हो सकती हैं और हम सभी जानते हैं कि इस बात को झुठलाया नहीं जा सकता।

किन्तु यह तभी सम्भव था जबकि नारियाँ सुसंस्कारी हों, उनमें उत्थान की तीव्र उत्कंठा हो और धर्म का स्वरूप जानने के साथ-साथ वे उसकी क्रियात्मक परिणति के लिए भी तत्पर हों जबकि आज इन भावनाओं का अकाल-सा हो गया था। तब आचार्यश्री अतीत के उन गौरवशाली स्वर्णिम दृष्टान्तों को वर्तमान के ज़हन में पुन: साकार करने का स्वप्न संजोकर नारी में चेतना व जागृति

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

का संचार करने हेतु तत्पर हो उठे। प्रत्यक्ष व परोक्ष दोनों रूपों से वे इस दिशा में सतत प्रयत्नशील रहे। वे चाहते थे कि स्त्रियों में ज्ञान की ज्योति स्वयं उनके अन्तरमन से प्रकाशित हो। इस हेतु वे स्वाध्याय पर विशेष जोर देते थे। महावीर श्राविका संघ की स्थापना करते समय भी उन्होंने इस प्रवृत्ति को विशिष्ट रूप से संघटन की नियमावली में सम्मिलित किया। आत्म-उत्थान के प्रयास में यह प्रवृत्ति बहुत सहायक हो सकती है, ऐसा वे हमेशा मानते थे।

वे समाज की नारियों में धर्म व क्रिया का अनुपम संगम चाहते थे। वे कहते थे कि क्रिया के बिना ज्ञान भारभूत है और ज्ञान के बिना क्रिया थोथी है। जिस प्रकार रथ को आगे बढ़ाने के लिए उसके दोनों पहियों का होना आवश्यक है, उसी प्रकार समाज-विकास के रथ में ज्ञान व क्रिया दोनों का होना उसको प्रगति के लिए आवश्यक है, ऐसा उनका अटूट विश्वास था। किन्तु दुर्भाग्यवश ये दोनों (ज्ञान व क्रिया) पृथक् होकर समाज का विभाजन कर चुके थे और समाज की महिलाओं के ऐसे दो वर्गों पर अपना-अपना शासन स्थापित कर रहे थे जो परस्पर बिल्कुल विपरीत और पृथक् थे, नदी के दो किनारों की भांति, जिनके मिलन के अभाव में समाज का ह्रास हो रहा था।

एक ओर थी आधुनिक काल की वे युवतियाँ जो तथाकथित उच्च शिक्षा की प्राप्ति कर धर्म को जड़ता का प्रतीक मानती थीं। मात्र भौतिक ज्ञान की प्राप्ति से वे गौरवान्वित थीं। बड़ी-बड़ी पुस्तकों का अध्ययन कर, डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त कर वे विदुषी तो कहलाती थीं किन्तु ज्ञानी नहीं बन पाती थीं। धर्म का तात्पर्य उनके लिए मात्र शब्दकोषों में सिमट कर रह गया था। वह पिछड़ेपन की निशानी व भावी प्रगति में बाधक माना जाता था। नाना प्रकार की धार्मिक क्रियाएँ उनके लिए व्यंग्य का विषय थीं। ऐसी स्त्रियों में आचार्यश्री ने धर्म का बीज वपन किया। उन्होंने अपनी प्रेरणा से उनके ज्ञान के साथ धर्म व क्रिया को सम्बद्ध किया, यह कहते हुए कि क्रिया व ज्ञान के समन्वय से ही धर्म फलीभूत होता है। उन्होंने अपनी ओजस्वी वाणी व अपने जीवन-चरित्र के माध्यम से उन युवतियों में अध्यात्म का इस प्रकार संचार किया कि वे युवतियाँ जो कभी धर्म को हेय दृष्टि से देखा करती थीं, अब उसी धर्म को अपना मानने में, स्वीकार करने में गौरव की अनुभूति करने लगीं। अतीत के कल्पनातीत दृष्टान्तों द्वारा आचार्य प्रवर के माध्यम से प्रेरणा पाकर धर्म के प्रति उनकी रुचि इतनी तीव्र हो गई कि वे धार्मिक क्रियाएँ जैसे सामायिक, प्रतिक्रमण, माला इत्यादि, जो उनकी दृष्टि में मात्र समय के अपव्यय की कारक थीं, अब उनके जीवन के साथ घनिष्ठता से जुड़ गईं और उन्हीं में अब उन्हें आत्म-उत्थान का मार्ग दृष्टिगत होने लगा। उनके जीवन का रुख अब बदल चुका था और वे

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

समर्पण भाव से धर्म के, समाज के बिस्तार में, निर्माण में अपना हाथ बंटाने लगीं, किन्तु क्यों ? स्पष्ट था आचार्य प्रवर की प्रेरणा से ।

दूसरी ओर समाज में नारियों का वह वर्ग था जो धर्म की दिशा में क्रियाशील तो था किन्तु एक निश्चित उद्देश्य की अनुपस्थिति में, क्योंकि उनमें ज्ञान का सर्वथा अभाव था । ज्ञान के अभाव में उस क्रिया के निरर्थक होने से उसका अपेक्षित फल न उन्हें मिल पा रहा था, न समाज को । वे जो करती थीं उसे जान नहीं पाती थीं । अंधविश्वासों से ओतप्रोत होकर वे धर्म की पुरातन परम्परा का मात्र अंधानुकरण करती थीं, फलतः उसके लाभ की प्राप्ति से भी वंचित रह जाती थीं । धर्मपरायण बनने की होड़ में सम्मिलित होकर वे माला फेरती थीं किन्तु एकाग्रचित्त होकर इष्ट का स्मरण करने नहीं वरन् यह दिखाने के लिए कि हम धार्मिक हैं । उनके विवेक चक्षुओं पर अज्ञान की पट्टी बंध कर उन्हें विवेकहीन बना रही थी । वास्तव में वे अपनी, अपने परिवार की सुख-शांति हेतु धर्म से डरी हुई होती हैं । क्योंकि बाल्यकाल से ही यह विचार उन्हें संस्कारों के साथ जन्मघुट्टी के रूप में दे दिया जाता है और इस प्रकार दिया जाता है कि वे अनुकरण की आदी हो जाती हैं । उसके बारे में सोचने-समझने या कुछ जानने की स्वतन्त्रता या तो उन्हें दी नहीं जाती या फिर वे इसे अपनी क्षमता से परे जान कर स्वयं त्याग देती हैं । उनका ज्ञान हित व अहित के पहलू तक सिमट जाता है कि यदि हम धर्म नहीं करेंगे तो हमें इसके दुष्परिणाम भुगतने होंगे और बस यह कल्पना मात्र धर्म को उनके जीवन की गहराइयों तक का स्पर्श करने से रोक देती है और मात्र उस भावी अनिष्ट से बचने के लिए वे सामायिक का जामा पहन कर मुँहपत्ती को कवच मान लेती हैं । उसके पुनीत उद्देश्य व मूल स्वरूप की गहराई तक पहुँचने का अवसर उनसे उनकी अज्ञानता का तिमिर हर लेता है ।

समाज में ऐसी स्त्रियों की तादाद एक बड़ी मात्रा में थी अतः उनकी चेतना के अभाव में समाज के विकास की कल्पना भी निरर्थक थी । अतः आचार्य श्री ने अपनी प्रेरणा की मशाल से ऐसी नारियों में ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित की । उन्होंने अपने प्रवचनों के माध्यम से उन्हें धर्म का तात्पर्य बताया । धर्म क्या है ? क्यों आवश्यक है ? माला का उद्देश्य क्या है ? सामायिक की विधि क्या हो ? इत्यादि अनेकानेक ऐसे अव्यक्त प्रश्न थे जिनका समाधान उन्होंने अत्यन्त सहज रूप में किया और निश्चय ही इसका सर्वाधिक प्रभाव उन रूढ़ि-वादी नारियों पर ही पड़ा । उनकी मान्यताएँ बदल गईं और धर्म जीवन्त हो उठा ।

इस प्रकार उन्होंने स्त्रियों में ज्ञान व क्रिया दोनों को समाविष्ट करने का यत्न किया किन्तु इसके मूल में कहीं समाज के उत्थान का उद्देश्य ही निहित

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

था क्योंकि स्त्रियाँ ही निर्माता होती हैं भावी पीढ़ी की और माध्यम होती हैं संस्कारों के संचार की। अतः उन्हें ज्ञान व क्रिया के अपूर्व समन्वव का सन्देश देकर उन्होंने भावी सुसंस्कृत समाज की आधारशिला रख दी थी।

"क्रिया से ज्ञान का, जब नारी में होगा संगम,
हर दृश्य तब पावन समाज का, निस्संदेह बनेगा बिहंगम।"

इस प्रकार आचार्यश्री ने नारी उत्थान में अपूर्व योगदान दिया किन्तु वे उसकी स्वतन्त्रता के पक्षधर थे, स्वच्छन्दता के नहीं। उसकी नैसर्गिक मर्यादा का उल्लंघन उनकी दृष्टि में वर्जित था। उनका मानना था कि नारी का कार्य-क्षेत्र उसकी सीमाओं के भीतर ही वांछनीय है अन्यथा सीमा के बाहर की उप-लब्धियाँ नारी की शोभा को विकृत कर देती हैं और तब वे समाज के अहित में ही होती हैं। नारी चेतना के विकास की सबसे बड़ी विडम्बना वर्तमान में यही है कि नारी की स्बतन्त्रता मात्र स्वच्छन्दता व पुरुषों के विरोध का प्रतीक बन गई है। नारी स्वतन्त्रता की दुहाई देकर महिलाएँ फैशनपरस्ती की दौड़ में सम्मिलित हो जाती हैं और पुरुषों के विरुद्ध नारेबाजी का बिगुल बजा कर स्वयं को अत्याधुनिकाओं की श्रेणी में मानकर गौरवानुभूति करती हैं। ऊँची-ऊँची डिग्रियाँ हासिल कर वे समाज को रचनात्मक सहयोग नहीं देतीं, ऊँचे ओहदे प्राप्त करने के पीछे उनका उद्देश्य समाज व परिवार की आर्थिक मजबूती नहीं होता वरन् ये सब तो प्रतीक होता है उनकी झूठी शान का, बाहरी दिखावे का और भीतर में ही कहीं इस अहम् की पुष्टि का भी कि हम पुरुषों से कहीं आगे हैं और हमें उनके सहयोग की आवश्यकता कदापि नहीं। किन्तु इस मिशन के पीछे भागने की उन्हें बहुत बड़ी कीमत अदा करनी पड़ती है। 'कुछ' अधिक पाने की लालसा लिए वे परस्पर भी मनमुटाव कर बैठती हैं और समाज को कमजोर बना देती हैं। 'कुछ' की प्राप्ति में वे अपना 'बहुत कुछ' खो बैठती हैं—अपने परिवार की सुख-शांति, समाज के सृजन की कल्पना और यहाँ तक कि स्नेह व सहयोग की भावनाएँ भी जो कहीं अन्दर ही अन्दर समाज को खोखला बना देती हैं।

वस्तुतः इसीलिए आचार्यश्री नारी की ऐसी स्वतन्त्रता के पोषक कभी नहीं रहे। नारियाँ अपनी विशिष्ट पहचान बनाएँ अवश्य किन्तु किसी अन्य को हटा कर नहीं, वरन् अपना स्थान खुद बना कर, वे विचारों से आधुनिक बनें, रहन-सहन से नहीं। सादगी एवं सौम्यता निस्संदेह सफलता के बावजूद उनके व्यक्तित्व के अहम पहलू हों तो ही वे समाज के विकास में सकारात्मक योग दे सकती हैं। उनकी सीमाएँ इसमें बाधक नहीं क्योंकि त्याग, धैर्य, सहनशीलता, सृजन व उदारता के नैसर्गिक गुण उनके कार्यक्षितिज की सम्भावनाओं को

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अपरिमित रूप से जब विस्तृत कर देते हैं तो फिर उनका अतिक्रमण किसलिए ? अत: आचार्यश्री यही कहा करते थे कि यदि प्रत्येक नारी अपने परिवार को सुसंस्कारों व स्वस्थ विचारों का पोषण प्रदान करे तो निश्चय ही उनसे जुड़कर बनने वाला समाज भी स्वत: ही धर्मोन्मुख होगा और तब उसमें संस्कारों को दवा रूप में बाहर से भेजने की आवश्यकता का कहीं अस्तित्व नहीं होगा।

किन्तु इन सीमाओं से आचार्यश्री का तात्पर्य नारी को उदासीन या तटस्थ बनाने का नहीं था। वे तो स्त्रियों को स्वावलम्बन की शिक्षा देना चाहते थे ताकि वे अपने शोषण के विरुद्ध आवाज उठा सकें। तत्कालीन विधवा समाज सुधार में उनका योगदान प्रेरणास्पद था।

उस समय विधवाओं की स्थिति अत्यन्त दयनीय व शोचनीय थी। वे समाज का वो उपेक्षित अंग थी जिन्हें घुटन भरी श्वासों का अधिकार भी दान में मिलता था। उनके लिए रोशनी की कोई किरण बाकी नहीं रह जाती थी और यहाँ तक कि वे स्वयं भी इसी जीवन को अपनी बदनसीबी व नियति मानकर संकीर्णता की परिधि में कैद हो जाती थीं। आचार्यश्री ने उन्हें इस चिन्ताजनक स्थिति से उबारा। उन्होंने उन्हें जीवन की सार्थकता समझाकर उनमें नवीन आत्म-विश्वास का संचार किया व उन्हें अनेक रचनात्मक भावनाएँ व सृजनात्मक प्रवृत्तियाँ प्रदान कीं जिससे वे भी ऊपर उठकर समाज निर्माण में एक विशिष्ट भूमिका का निर्वाह कर सकें। यह उन्हीं की प्रेरणा का फल है कि आज अनेकानेक विधवाएँ संकीर्णता के दायरे से निकल कर मजबूती के साथ धर्म-कार्य में संलग्न हैं व अन्य नारियों के लिए भी प्रेरणा का स्रोत बनी हुई हैं।

आचार्यश्री की इस प्रवृत्ति से सती-प्रथा विरोधी आन्दोलन को भी बल मिला। उन्होंने विधवाओं को सम्मानजनक स्थिति प्रदान कर सती-प्रथा का भी विरोध किया। वे शुभ कर्मों से मिले दुर्लभ मानव-जीवन को समय से पूर्व ही स्वत: होम करने के पक्षधर नहीं थे। जिस प्रकार मनुष्य जन्म का निर्धारण हमारे हाथ में नहीं, उसी भाँति उसके अन्त को भी वे हमारे अधिकार क्षेत्र से परे मानते थे। वे इसे कायरता का प्रतीक मानकर इसके स्थान पर शरीर को धर्म-साधना में समर्पित कर देना बेहतर मानते थे।

उन्होंने अन्य कई नारी विरोधी कुरीतियों के उन्मूलन पर बल दिया। विशेषत: वे दहेज प्रथा के विरुद्ध अक्सर प्रयत्नरत रहते थे। दहेज प्रथा को वे समाज का कोढ़ मानते थे जो समाज को अपंग, नाकारा एवं विकृत बनाये दे रही थी। इस दावानल की भीषण लपटें निरन्तर विकराल रूप धारण करती

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

हुई समाज की नारियों को अपनी चपेट में लेकर होम कर रही थी। आचार्यश्री इसे मानवीयता के सर्वथा विपरीत मानते थे और इस प्रथा को समूल नष्ट करने हेतु प्रयासरत थे। इस हेतु आचार्यश्री ने विशेष प्रयत्न किया। उन्होंने युवाओं में इसके विरोध के संकल्प का प्रचार करने के साथ-साथ स्त्रियों में इसके विरुद्ध जागृति उत्पन्न की। वे जानते थे कि यदि युवतियाँ स्वयं इस प्रथा की विरोधी बन जाएँ तो इसमें कोई शक नहीं कि यह प्रथा विनष्ट हो सकती है। अतः उन्होंने इस हेतु एक आम जन-जागृति उत्पन्न की।

इन प्रथाओं के विरोध के साथ-साथ ही आचार्यश्री ने नारी व उसके माध्यम से समाज में, सद्प्रवृत्तियों के विकास हेतु समाज की नारियों को महावीर श्राविका संघ बनाने की प्रेरणा दी जिसका मूल उद्देश्य नारियों में धर्माचरण की प्रवृत्ति को और भी प्रशस्त करना है। आज भी अनेकानेक नारियां इस संघ से जुड़ कर धर्म समाज के निर्माण में सक्रिय भूमिका निभा रही हैं। समस्त उद्देश्य, जो संगठन को बनाते समय समक्ष रखे गये थे, आज भी उतने ही प्रासंगिक व व्यापक हैं, जो धर्माराधन की प्रक्रिया को निरन्तर बढ़ावा देने वाले हैं और विनय की भावना के प्रसारक भी हैं जो धर्म का मूल है। इस प्रकार उपर्युक्त संघ से संलग्न विभिन्न नारियाँ आज अपने जीवनोद्धार के साथ-साथ परोपकार में भी संलग्न हैं।

इस तरह वर्तमान सुदृढ़ समाज के निर्माण में गुरु हस्ती का योगदान नकारा नहीं जा सकता। नारी चेतना के अमूल्य मंत्र से उन्होंने समाज में धर्म व अध्यात्म की जो ज्योति प्रज्वलित की थी उसके आलोक से आज सम्पूर्ण समाज प्रकाशित है। किसी कवि ने अपनी लेखनी के माध्यम से इसकी सार्थक अभिव्यक्ति करते हुए अत्यन्त सुन्दर ढंग से कहा है—

"आचार्यश्री हस्तीमलजी, यदि मुनिवर का रूप नहीं धरते,
यदि अपनी पावन वाणी से, जग का कल्याण नहीं करते।
मानवता मोद नहीं पाती, ये जीवित मन्त्र नहीं होते,
यह भारत गारत हो जाता, यदि ऐसे सन्त नहीं होते।।"

और वास्तव में ऐसे सन्त को खोकर समाज को अपार क्षति हुई है। समाज को नवीन कल्पनाएँ देने वाला वह सुघड़ शिल्पी, चारित्र चूड़ामणि, इतिहास मार्तण्ड आज हमसे विलग होकर अनन्त में लीन हो गया है किन्तु हमें उसे समाप्त नहीं होने देना है। जिन सौन्दर्यमय प्रसूनों को वह अपनी प्रेरणा से महक प्रदान कर समाज-वाटिका में लगा गया है, अब हमें उनकी सुरभि दूर-दूर तक प्रसारित कर अपने उत्तरदायित्व को निभाना है। तो आइये, हम सभी

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

आज मिलकर यह संकल्प दोहराएँ कि नारी-चेतना की जो मशाल वे हमें थमा गये हैं, हम उसे बुझने नहीं देंगे। समाज की जागृत महिलाओं को अब धर्म-प्रसार में आगे आना होगा, सुषुप्त महिलाओं में चेतना उत्पन्न करनी होगी और नारी-चेतना ही क्यों सेवा, दया, विनय, अनुशासन, एकता, सामायिक और स्वाध्याय इत्यादि के क्षेत्र में जो कार्य वे शुरू कर गये हैं, हमें सक्रिय योगदान देकर उन्हें गतिशील करना है, उन्हें चरम परिणति तक पहुँचाना है ताकि कहीं दूर वे भी हमें देखकर गौरवान्वित हो सकें और हमारा जीवन सार्थक बन सके।

किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि फिर भी एक कसक हमारे दिलों में कहीं न कहीं अवश्य होगी इस पुकार के साथ—

"हजारों मंजिलें होंगी, हजारों कारवां होंगे।
निगाहें जिनको ढूँढ़ेगी, न जाने वो कहाँ होंगे॥"

और सचमुच, वह व्यक्तित्व था ही ऐसा, अनन्त अनन्त गुणों से युक्त किन्तु उनके गर्व से अछूता, सदैव अविस्मरणीय, जिसके प्रति हम तुच्छ जीव अपनी भावनाएँ चित्रित करने में भी असमर्थ रहते हैं।

"वे थे साक्षात गुणों की खान, कैसे सबका भंडार करूँ,
दिये सहस्र प्रेरणा के मंत्र हमें, चुन किसको में गुँजार करूँ?
बस स्मरण करके नाम मात्र, मैं देती अपना शीश नवां,
क्योंकि यह सोच नहीं पाती अक्सर, किस एक गुण का गान करूँ।"

ऐसी महाविभूति के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन।

—द्वारा, श्री मनमोहनजी कर्णावट, विनायक ११/२०–२१,
राजपूत होस्टल के पास, पावटा, 'बी' रोड, जोधपुर

- माता का हृदय दया का आगार है। उसे जलाओ तो उसमें दया की सुगन्ध निकलती है। पीसो तो दया का ही रस निकलता है। वह देवी है। विपत्ति की क्रूर लीलाएँ भी उस निर्मल और स्वच्छ स्रोत को मलिन नहीं कर सकतीं। **—प्रेमचन्द**
- ईश्वरीय प्रेम को छोड़कर दूसरा कोई प्रेम मातृ-प्रेम से श्रेष्ठ नहीं है। **—विवेकानन्द**
- माता के चरणों के नीचे स्वर्ग है। **—हजरत मोहम्मद**

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org